International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 20-07-2021, Accepted: 06-08-2021, Published: 21-08-2021
Volume 7; Issue 4; 2021; Page No. 147-149

दुष्यन्त कुमार की गजलों में सामाजिकता और मूल्य बोध

डॉ. वनिता कुमारी
पीएचडी स्कॉलर, सिंघानिया यूनिवर्सिटी, पचेरी बड़ी, झुंझुनू, राजस्थान, भारत

प्रस्तावना

ग़ज़लकार दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लों में समाज के लिए संदेश, प्रेरणा व संवेदना का जो स्वर व्यक्त हुआ है वह इस विधा में अन्यत्र नहीं मिलता। दुष्यन्त कुमार एक ऐसे युग निर्माता साहित्यकार हैं जो प्रेम का अनुभव करते–करते सामाजिक पीड़ा का अनुभव करने लगे और फिर उस अनुभव ने उन्हें ऐसा क्रान्तिकारी स्वभाव दे डाला कि वे शासन सत्ता के शीर्ष पर बैठे हुक्मरानों तक से सीधे भिड़ने लगे, सामान्य मानव की पीड़ा के साहित्यकार बन गए और फिर यही उनकी पहचान बन गई।

साये में धूप दुष्यन्त कुमार जी का वह ग़ज़ल संग्रह है जिसने दुष्यन्त जी को रातो–रात प्रसिद्ध के शिखर पर पहुँचा दिया। इसका नामकरण 'साये में धूप' एक ऐसी प्रतीकात्मकता को लिए हुए है जो एक साथ व्यवस्था और व्यंग्य को समेटे हुए है। जहाँ व्यवस्था रूपी छाया में भी अव्यवस्था की धूप तपा रही है वहाँ किसी मुसाफिर का ठहरना कैसे सम्भव हो सकता है। दुष्यन्त जी के इस शे'र में यही टीस व्यक्त हुई है–

''यहाँ दरख्तों के साये में धूप लगती है,
चलो यहाँ से चलें और उम्र भर के लिए''[1]।

राजनीतिक वायदों का सचः दुष्यन्त कुमार स्वतंत्रता के पश्चात् उपजी परिस्थितियों के व्याख्याकार, ग़ज़लकार के रूप में जाने जाते हैं। देश की स्वतंत्रता से पूर्व हमारे देश के राजनेताओं द्वारा किए गए वायदे खोखले निकले। जनता जो कि स्वतंत्रता को एक देवी के रूप में देख रही थी उसका स्वरूप भयावह हो गया। समाज के अगुवाकार नेता अपनी झोलियाँ भरने में व्यस्त हो गए। जनता से दूरियाँ बनाने लगे, अपना स्वार्थ सिद्ध करने में ही संलग्न हो गए। ऐसी परिस्थिति में जनता में असंतोष का भाव व्याप्त हो गया। सरकारों के काम–काज की शैली बदल गई। जनता को केवल सांत्वना दी जाने लगी, देश का खजाना खाली होने की दुहाई दी जाने लगी। पुरानी सत्ता पर सारा दोषारोपण किया जाने लगा जिससे उनका दोष सामने न आए किन्तु जनता को इसे समझने में बहुत अधिक समय न लगा उसे झूठ के द्वारा आखिर कब तक भ्रमित किया जा सकता है। जनता की मनोदशा को महसूस करते हुए दुष्यन्त कुमार लिखते हैं–

''कहाँ तो तय था चिरागाँ हरके घर के लिए,
कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए।''[2]

आम आदमी की बदहाली का चित्रणः दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लों में आम आदमी की पीड़ा, उसकी बदहाली का चित्रण साफ दिखाई देता है। देश की जनता गरीबी में दिन गुजारने के लिए विवश है। समाज के धनी वर्ग को इसकी कोई परवाह नहीं। स्थितियाँ केवल यह ही नहीं हैं कि इसमें कमी केवल धनाढ्य वर्ग की है। कमी गरीब तबके की भी है कि वह किस हद तक अपने फटेहाल बने रहने का आदी हो चुका है। यदि व्यक्ति में कुछ कर गुजरने की हिम्मत हो तो उसकी मदद करने वाला भी कोई न कोई तो मिल ही जायेगा किन्तु जब वह पूरी तरह से स्वयं को, उस परिस्थति को, अपनी नियति ही मान बैठता है तो फिर इससे दुखद स्थिति और क्या हो सकती है।

''न हो कमीज तो पाँवों से पेट ढँक लेंगे,
ये लोग कितने मुनासिब है इस सफर के लिए।''[3]

ठगी का शिकारः आम आदमीः दुष्यन्त आम आदमी की पीड़ा के कवि हैं वे उसके हर व्यवहार हर दुख–दर्द को स्वयं महसूस करते हैं। उसे कब किस समस्या से ग्रसित होना पड़ेगा वह नहीं जानता। वह सीधा सच्चा आम आदमी कदम–कदम पर सताया जाता हैं उसके भोलेपन का फायदा उठाने वाले उसको भरे बाजार तनहां कर जाते हैं। मजदूर मिल मालिक की गालियाँ सुनने के लिए मजबूर होता है। जनता राजनेताओं के झूठे वादों पर जानबूझकर विश्वास करती है। जनता तक लाभ के रूप में दी गई राशि नहीं पहुँचती। सरकारी तंत्र की खामियाँ भी मालूम हैं किन्तु बेबस जनता यह सब सहने के लिए बाध्य है। दुष्यन्त कुमार सत्ताधारियों के किये गये वायदों से पूरी तरह वाकिफ़ हैं तभी तो वे कह उठते हैं–

''यहाँ तक आते–आते सूख जाती हैं कई नदियाँ,
मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।''[4]

महानगरीय जीवन और मानवता ह्रासः आम–आदमी के जीवन की कोई एक समस्या नहीं है उसे केवल आक्रोश शासन–सत्ता से ही नहीं है अपने आस–पास उपस्थित समाज के लोगों से भी है। आज अपने ही कार्य के लिए व्यक्ति को स्वयं से लड़ना पड़ता है। उसके सामने ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न हो गई हैं जिनसे लड़ने की सामर्थ्य अब उसमें नहीं बची। गाँवों में रहने वाले सीधे–सादे सरल लोग अब शहरों में निवास करने लगे हैं सुविधा सम्पन्न हो गए हैं।

वे आत्मसीमित हो गए हैं। रात दिन मशीन की तरह काम में लगे रहते हैं, उनके लिए भावना का कोई मूल्य नहीं रह गया। स्वार्थ की मैली मोटी पर्त उन्हें मानवता के मार्ग से विचलित कर चुकी है। दुष्यन्त समाज की ऐसी अवस्था को देखकर व्यथित हो उठते हैं। वे चाहते हैं कि जिस भारत का सपना हमने अपनी खुली आँखों से देखने का ख्वाब सजाया था वह दृष्टि गोचर नहीं हो रहा है। व्यक्ति यंत्र चालित सा होकर अपने साथ के अपने परिवार के लोगों से ही दूर होता जा रहा है उनकी ग़ज़लों में इस समस्या का जो चित्र अंकित किया गया है, वह वास्तव में चिन्तन के योग्य है, दृष्टव्य है उनका ये शे'र–

''इस शहर में वो कोई बारात हो या वारदात,
अब किसी भी बात पर खुलती नहीं हैं खिड़कियाँ।''[5]

जनता में मोहभंग की स्थितिः– समाज में फैली अव्यवस्था के

कारण आज समाज का प्रत्येक व्यक्ति उचित निर्णय नहीं ले पा रहा। वह ऊहापोह की स्थिति से गुजर रहा है। दुष्यन्त कुमार जनता की इस स्थिति को पूरी तरह से समझते हैं। उन्हें मालूम है कि कहाँ कौन सी समस्या हमारे इन्तजार में खड़ी है। जो आदर्श बचपन से व्यक्ति को सिखाए गए हैं वह उन पर चलकर अपने उद्देश्य की पूर्ति करना चाहता है किन्तु जब वह उसकी प्राप्ति करता है तो उसे प्रतीत होता है कि वास्तव में वो आदर्श तो कहीं नज़र ही नहीं आ रहे और उसने उनके लिए अपने जीवन का एक बड़ा हिस्सा गँवा दिया है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति के मन में निराशा का भाव जागृत होता है और फिर मोहभंग की स्थिति। दुष्यन्त कुमार की ग़ज़ल के इस शे'र में उनका यही भाव प्रकट हुआ है–

''ये सोचकर कि दरख्तों में छाँव होती है,
यहाँ बबूल के साये में आके बैठ गए।''[6]

भ्रष्ट व्यवस्था पर प्रहार :– दुष्यन्त कुमार केवल धार्मिक, सामाजिक ही नहीं राजनीतिक व्यवस्था में भी फैले भ्रष्टाचार पर प्रहार करते हैं वे एक ऐसे क्रान्तिकारी विचारों के धनी साहित्यकार हैं जो कभी भी कहीं भी, किसी भी परिस्थिति में वे झुकना नहीं जानते। दुष्यन्त समाज में फैले भ्रष्टाचार का खुलकर विरोध करते हैं। जिस समय साहित्य जगत में एक सक्रिय ग़ज़लकार के रूप में लेखन कार्य कर रहे थे उस समय देश स्वतंत्र हो चुका था। देश की जनता का आजादी का जोश ठण्डा पड़ने लगा था, उसके खून में पुनः उबाल आना शुरू हो गया था। राजनेताओं की कार्य शैली जनता को निराश करने वाली थी मानव मूल्यों का पतन हो रहा था। भ्रष्टाचार अपने चरम पर था। भ्रष्टाचार के सम्बन्ध में दुष्यन्त का मत हमेशा से स्पष्ट रहा है जिसे डा0 जिबाबराव पाटिल ने 'दुष्यन्त कुमार के साहित्य का पुनर्मूल्यांकन' पुस्तक में लिखा है–

''भ्रष्टाचार एक ऐसा दलदल है जिसमें सभी के पाँव धँसे हुए हैं।''[7]

दुष्यन्त कुमार ने कीचड़ और पाँव की बात करने में भ्रष्टाचार और भ्रष्टाचारी दोनों को ही समाज में हर तरफ व्याप्त माना है। देश के हर कोने में भ्रष्टाचार का कीचड़ फैल चुका है जो ईमानदार सच्चे इंसान को आगे बढ़ने ही नहीं दे रहा। तभी दुष्यन्त लिखते हैं–

''हर सड़क पर इस क़दर कीचड़ बिछी है,
हर किसी का पाँव घुटनों तक सना है।''[8]

क्रान्ति का आह्वानः एक प्रेम की पीर का कवि कितना क्रान्तिकारी हो सकता है, इसका जीता जागता उदाहरण दुष्यन्त कुमार थे। प्रेम में जो दर्द होता है, जब वो किसी एक का न रहकर समाज का हो जाता है तो उसका रूप सौम्य न हरकर उग्र हो उठता है। दुष्यन्त की ग़ज़लों में उनका ऐसा ही परिवर्तित रूप प्रकट हुआ हैं उन्होंने जब देश की जनता के कष्टों को स्वयं की आँखों से देखा तथा महसूस किया तब वे क्रान्तिकारी बन गए हैं वे सोई हुई मानवता को जगाने का कार्य करने के साथ–साथ देश की युवा शक्ति को जोश से भरने में अहम भूमिका का निर्वहन करते हैं। दुष्यन्त पर्वत जैसी पीर को पिघलाने में विश्वास रखते हैं उनके सामने बड़ी से बड़ी शक्ति भी घुटने टेकने पर मजबूर होती है। दुष्यन्त नवीनता के पोषक हैं वे थोड़ी सी हलचल से संतुष्ट नहीं होते उनके लिए पूर्ण परिवर्तन ही एक मात्र लक्ष्य है दुष्यन्त कुमार देश की जनता से स्वयं की रक्षा तथा मानवता की सम्भाल हेतु क्रान्ति का आह्वान करते हैं उनकी इन पंक्तियों में यही स्वर मुखरित हुआ है–

'हो गई है पीर पर्वत–सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।''[9]

पुरानी परम्परा और रूढ़ियों का विरोधः नवीनता के संपोषक दुष्यन्त कुमार उन परम्पराओं और रूढ़ियों का विरोध करते हैं जो आज के समय में अपना अस्तित्व खो चुकी हैं, प्रासंगिक नहीं रह गईं, प्राचीनता का बोध कराती हैं। समाज लगातार प्रगति के पथ पर चलने का प्रयास करता है अतः नवीन परम्पराओं का स्वागत होना चाहिए। नवीनता देश को विश्व पटल पर स्थापित करने के लिए आवश्यक है प्राचीनता हमें इतिहास बोध तो करा सकती है किन्तु नवीन खोज का ज्ञान नवीन उन्नति का पथ नहीं दिखा सकती। दुष्यन्त ने अपने काव्य में अनेक स्थानों पर इस विषय को अपनी लेखनी का सहारा दिया है पुरानी पीढ़ी का ज्ञान नवीन पीढ़ी का आधार बने। वह आधार जिसके अनुभवों को साथ लेकर समाज एक नई परम्परा एक नवीन चलन, एक नवीन भावाभिव्यक्ति, नवीन पद्धति का विकास करे जिससे समाज का, देश का, मानवता का चतुर्दिक उत्थान हो सके और इसके लिए यदि पुराने उपमानों को तिलाजंलि देनी पड़े तो इसमें कोई हर्ज नहीं। दुष्यन्त के इस शे'र में उनका यही विरोध का स्वर दिखाई देता है–

''पुराने पड़ गए डर, फेंक दो तुम भी,
ये कचरा आज बाहर फेंक दो तुम भी।
लपट आने लगी है अब हवाओं में,
ओसारे और छप्पर फेंक दो तुम भी।''[10]

देश की स्थिति पर चिन्ताः दुष्यन्त कुमार को समाज की वेदना का, कष्ट का, जितना अनुभव था उतना ही उन्हें राजनीति का भी ज्ञान था। वे देश के बारे में जब सोचने बैठते हैं तो उन्हें महसूस होता है कि आखिर देश का कितना स्वरूप परिवर्तित हो सका है। देश आज भी वही है बस शासक बदलते रहे, शासन करने के तौर तरीके बदलते रहे किन्तु देश आज भी वही है। यहाँ देश की स्थिति तो 'ज्यों–ज्यों दवा की दर्द बढ़ता गया' वाली हो गई है जनता को, शासक को, किसी को भी देश की चिन्ता नहीं है। देश की हालत दिन–ब–दिन बिगड़ती जा रही है और दावे पर दावे किये जा रहे हैं कि देश अब आगे बढ़ गया है, देश में प्रगति आ रही है, देश समृद्ध हो रहा है और जल्द ही एक विकसित देश की श्रेणी में होगा किन्तु वास्तविकता कुछ यूँ है–

''मेरे दिल पे हाथ रक्खो, मेरी बेबसी को समझो,
मैं इधर से बन रहा हूँ, मैं इधर से ढह रहा हूँ।''[11]

मानवता के प्रति समर्पण का भाव :– एक साहित्यकार कभी 'स्वयं', बनकर नहीं रह सकता वह परदुखकातर होता है। वह कहीं समाज बनता है, तो कहीं धर्म बनता है, तो कहीं देश बनकर अपने नागरिकों की पीड़ा को वहन करता है तो कभी अपनी ही बिगड़ी सन्तानों, भ्रष्टाचारियों के बुरे कर्मों के कारण शर्मिन्दा होता है।

उसका सम्पूर्ण जीवन 'पर' का होता है। दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लें मानवता बोध से भरी हुई हैं। वे स्वयं को मानवता के प्रति समर्पित करते हैं अपना स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं मानते। वे अपनी एक–एक ग़ज़ल को मानवता के लिए देश के लिए समर्पित करते हैं और इसे ही अपना दायित्व, अपना कर्म, देश सेवा मानते हुए कहते हैं–

''मुझमें रहते हैं करोड़ो लोग चुप कैसे रहूँ,
हर ग़ज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान है।''[12]

विज्ञापनों पर व्यंग्यः दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लें वर्तमान समय की समस्याओं को समेटे हुए हैं वे केवल सत्तर के दशक की ही बातें नहीं थीं वे आज भी वैसी ही हैं। चुनाव प्रचार से लेकर सरकार बनने तक अपने कामों का प्रचार, इतना अधिक प्रचार कि वास्तविक स्थिति नजर ही नहीं आती। इश्तहार ही वास्तविक लगने लगते हैं जनता को ऐसे विज्ञापनों का लोभ दिखाया जाता है जब उसे सारे काम खुद होते नजर आते हैं। इस विडम्बना पर दुष्यन्त समाज की सोच और भोलेपन पर व्यंग्य कर बैठते हैं उनकी ग़ज़ल के ये शे'र इसी व्यंग्य को प्रकट करते हैं–

''अब किसी को भी नजर आती नहीं कोई दरार,
घर की हर दीवार पर चिपके हैं इतने इश्तहार।''[13]

ग़ज़लकार दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लों में समाज के लिए संदेश, प्रेरणा व संवेदना का जो स्वर व्यक्त हुआ है, वह इस विधा में अन्यत्र नहीं मिलता।

संदर्भ सूची

1. साये में धूप, दुष्यन्त कमार, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, पृ0 13
2. वही, पृ0 13
3. वही, पृ0 13
4. वही पृ0 15
5. वही, पृ0 21
6. वही, पृ0 23
7. दुष्यन्त कुमार के साहित्य का पुनर्मूल्यांकन, डॉ0 जिबाबराव पाटिल, पृ0 77
8. साये में धूप, दुष्यन्त कमार, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, पृ0 27
9. वही, पृ0 30
10. वही, पृ0 33
11. वही, पृ0 53
12. वही, पृ0 57
13. वही, पृ0 63